© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 8 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

काव्यभेदाः

शिवानन्द शुक्ल
विभागाध्यक्ष साहित्य,
श्री सच्चा अध्यात्म संस्कृत महाविद्यालय, अरैल, इलाहाबाद।

सामान्य के ज्ञान के बिना विशेष की जिज्ञासा नहीं होता है अतः काव्य के सामान्य स्वरूप को कहने के पश्चात् विशेष स्वरूप काव्य भेद प्रतिपादन किया जा रहा है।

यहाँ भेद शब्द भेदनं भेदः विभागः इस भाव व्यत्पत्ति से उत्तममध्यमादि विभाग परक है, तथा भिद्यते अनेन इति भेदः इस करण व्युत्पत्ति से ध्वनि आदि विशेषलक्षण परक है।

कुछ आलङ्कारिक काव्य का विभाग काव्य की बाह्य संरचना (स्वरूप) की दृष्टि से करते हैं तो कुछ आचार्य काव्य के आत्मतत्त्व व्यङ्ग्य के प्राधान्य अप्राधान्य की दृष्टि के करते हैं। काव्यात्म तत्त्व के प्राधान्याप्राधान्य से काव्य भेद प्रतिपादित करने वाले आचार्यैं में भी काव्य भेद के विषय में एकरूपता नहीं अतः प्रकृत सन्दर्भ में इस विषय विचार पर किया जा रहा है। इस प्रकार यदि काव्य विभाग के सन्दर्भ में ध्वनिकार को मध्य में रखकर काव्य विभाग किया जाए तो हम यह कह सकते हैं कि ध्वनि से पूर्व काव्य के विभाग का मूल काव्य की संरचना भाषा आदि बाह्य तत्त्व है जबकि ध्वनि स्थापना के पश्चात् प्रायः सभी आचार्यों ने काव्य विभाग में प्रथम भेद ध्वनि काव्य को माना है।

१.३.१. पूर्वाचार्य◌ो◌ं का मत

1. आचार्य भामह-

आचार्य भामह काव्य का चार प्रकार से विभाग करते हैं - छन्द की दृष्टि से, भाषा की दृष्टि से, प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से तथा प्रकारान्तर से। प्रथमतः छन्द की दृष्टि से काव्य का विभाजन करते हुए कहते हैं - "शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यं च तद्विधा।'[1] अर्थात् गद्य तथा पद्य के भेद के काव्य दो प्रकार का है। काव्य का यह विभाजन छन्द की दृष्टि से है, कवि की छन्दरहित रचना गद्य तथा छन्दोबद्ध रचना पद्य कहलाती है।

भाषा की दृष्टि से काव्य को आचार्य भामह तीन प्रकार का बतलाते हैं- 'संस्कृतं प्राकृतं चान्यदपभ्रंशमिति त्रिधा।'[2] अर्थात् संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के भेद से काव्य तीन का प्रकार का होता है। यह काव्य का त्रिविध विभाजन भाषा की दृष्टि से है, संस्कृत भाषा में निबद्ध काव्य, प्राकृत भाषा में निबद्ध काव्य तथा अपभ्रंशाधिक्य काव्य।

पुनः आचार्य प्रतिपाद्य विषय के आधार पर काव्य का विभाग प्रतिपादित करते हैं -
वृत्तवेदादिचरिताशंसि चोत्पाद्यवस्तु च।
कलाशास्त्राश्रयं चेति चतुर्धा भिद्यते पुनः॥[3]

---

[1] काव्यलङ्कार पृ॰ 6।

[2] काव्यलङ्कार पृ॰ 6।

[3] काव्यलङ्कार पृ॰ 6।

IJSRST11738210 | Received : 20 Nov 2017 | Accepted : 17 Dec 2017 | November-December-2017 [(3)8: 1970-1979]

अर्थात् वृत्तवेदादिचरिताशंसि, उत्पाद्यवस्तु, कलाश्रय एवं शास्त्राश्रय के भेद से काव्य चार प्रकार का है। काव्य का यह विभाजन प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से है।

आचार्य प्रकारान्तर से पुनः काव्य को पाँच प्रकार का कहते हैं-

सर्गबन्धोऽभिनेयार्थः तथैवाख्यायिकाकथे।
अनिबद्धश्च काव्यादि तत्पुनः पञ्चधोच्यते॥[4]

अर्थात् सर्गबन्ध (महाकाव्य), अभिनेयार्थ (रूपक), आख्यायिका (गद्यभेद), कथा (गद्यभेद) तथा अनिबद्ध (मुक्तक) के भेद से काव्य का विभाजन करते हैं।

आचार्य के द्वारा प्रतिपादित सभी दृष्टियों से प्रतिपादित काव्य के भेद काव्य के बाह्यपक्ष को दृष्टि में रखकर किए गए हैं अन्तस् तत्त्व के ध्यान में रखकर नहीं।

2. आचार्य दण्डी –

आचार्य दण्डी प्रथमतः छन्द की दृष्टि से काव्य के तीन विभाग प्रदर्शित करते हैं-

गद्यं पद्यञ्च मिश्रञ्च तत्त्रिधेति व्यवस्थितम्।[5]

अर्थात् गद्य पद्य तथा मिश्र भेद से काव्य तीन प्रकार का है। पुनः आचार्य दण्डी काव्य के गद्य पद्य तथा मिश्र के भेदों के प्रभेदों को कहते हैं-

अपादः पदसन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा।
इति तस्य प्रभेदौ द्वौ .....॥[6]

अर्थात् अपाद पदसन्तान गद्य कहलाता है और यह गद्य कथा तथा आख्यायिका के भेद से दो प्रकार का होता है।

मुक्तक, कुलक, कोशादि यद्यपि पद्य काव्य के विविध भेद हैं तो भी सभी पद्य काव्य सर्गबन्ध होते हैं इसलिए पद्य काव्य के भेद का विस्तार नहीं किया गया है।[7]

मिश्र काव्य नाटकादि हैं तथा गद्यपद्यमयी रचना चम्पू कहलाती है-

मिश्राणि नाटकादीनि तेषामन्यत्र विस्तरः।
गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते॥[8]

भाषा के आधार पर आचार्य दण्डी काव्य के चार भेद कहते है-

तदेतद्वाङ्मयं भूयस्संस्कृतं प्राकृतं तथा।
अपभ्रंशश्च मिश्रं चेत्याहुराचार्याश्चतुर्विधम्॥[9]

अर्थात् संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा मिश्र के भेद से भाषा के आधार पर काव्य के चार भेद हैं। भाषा की दृष्टि से काव्य भेदों का आचार्य समन्वय स्थापित करते हैं। सर्गबन्धादि काव्य संस्कृत भाषा में, स्कन्धादि काव्य प्राकृत भाषा में, ओसरादि काव्य अपभ्रंश तथा नाटकादि काव्य मिश्र भाषा में निबद्ध हैं। कथा सभी भाषाओं में निबद्ध होती है।

---

[4] काव्यलङ्कार पृ॰ 7।

[5] काव्यदर्श भाग 1 पृ॰ 14।

[6] काव्यदर्श भाग 1 पृ॰ 24।

[7] मुक्तकं कुलकं कोशः सङ्घात इति तादृशः।
सर्गबन्धांशरूपत्वादनुक्तः पद्य विस्तरः॥ (काव्यदर्श भाग 1 पृ॰ 15)

[8] (काव्यदर्श भाग 1 पृ॰ 29)

[9] (काव्यदर्श भाग 1 पृ॰ 30)

संस्कृतं सर्गबन्धादि, प्राकृतं स्कन्धकादि यत्।
ओसरादिरप्रभ्रंशो नाटकादि तु मिश्रकम्॥
कथा हि सर्वभाषाभिः संस्कृतेन च बध्यते।[10]
आचार्य दण्डी द्वारा प्रतिपादिक यह काव्य विभाग भी बाह्य तत्त्व पर आधारित ही है।

3. आचार्य वामन-

आचार्य वामन प्रथमतः काव्य के दो भेद कहते हैं - गद्य तथा पद्य।[11] पुनः गद्य काव्य के तीन भेद[12] - वृत्तिगन्धि,[13] चूर्णम्,[14] तथा उत्कलिकाप्रायम्।[15] पुनः पद्य का विभाग गणना के बिना पद्य के अनेक भेद हैं[16] यह कहकर कहते हैं।

पुनः आचार्य वामन गद्य पद्य उभय साधारण काव्य अनिबद्ध एवं निबद्ध भेद से दो प्रकार का कहते हैं-
तदनिबद्धं निबद्धञ्च।[17]

इस प्रकार काव्य विभाग प्रतिपादन में आचार्य प्रथमतः गद्य एवं पद्य भेद से काव्य को दो प्रकार का प्रतिपादित कर पूर्वाचार्य प्रतिपादित छन्दमूलक विभाग की दृष्टि का समर्थन करते हैं, परन्तु गद्य भेद प्रतिपादन में आचार्य रीति का आश्रय लेते हैं।

4. ध्वनिकार आचार्य आनन्दवर्धन-

आचार्य आनन्दवर्धन काव्य के विभाग में सर्वप्रथम व्यङ्ग्य को भेदक तत्त्व के रूप में प्रतिपादित करते हैं। आचार्य के मत में सर्वथा व्यङ्ग्यार्थ छन्दोबद्ध शब्द योजना मात्र को काव्य नहीं कहा जा सकता। अतः आचार्य के काव्य भेद को हम निम्न प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं। प्रथमतः आचार्य के मत में काव्य भेद की दो दृष्टियाँ प्रतीत होती हैं। रसभावादितात्पर्यविवक्षा सहित, रसभावादितात्पर्यविवक्षा रहित। यह रसभावादितात्पर्यविवक्षा सहित काव्य दो प्रकार का है- एक वह जिसमें वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यङ्ग्यार्थ का प्राधान्य हो, द्वितीय भेद वह जिसमें व्यङ्ग्यार्थ के चमत्कार से चमत्कृत वाच्यार्थ का प्राधान्य हो। प्रथम भेद ध्वनिकाव्य तथा द्वितीय भेद गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य कहलाता है।[18] ये दोनों ही काव्य भेद व्यङ्ग्यार्थ के प्राधान्य तथा अप्राधान्य से हैं।

रसभावादितात्पर्यविवक्षारहित गुणालङ्कारप्राधान्य में काव्य का एक ही भेद है, जिसे चित्र काव्य कहते हैं।[19] यहाँ व्यङ्ग्यार्थ तो होता है परन्तु वह व्यङ्ग्यार्थ कवि विवक्षा विरहित ही होता है।

---

[10] (काव्यदर्श भाग 1 पृ॰ 33-34)

[11] काव्यं गद्यं च पद्यञ्च। (काव्यालङ्कारसूत्र 1.3.21, पृ॰ 37)

[12] गद्यं वृत्तिगन्धि चूर्णमुत्कलिकाप्रायञ्च। (काव्यालङ्कारसूत्र 1.3.22, पृ॰ 38)

[13] अदीर्घसमासम्, अनुद्धतपदवत्समासञ्च।

[14] अनाबिद्धललितपदं चूर्णम्। (काव्यालङ्कारसूत्र 1.3.24, पृ॰ 38)

[15] विपरीतमुत्कलिकाप्रायम् (काव्यालङ्कारसूत्र 1.3.25, पृ॰ 38)

[16] पद्यमनेकभेदम्। (काव्यालङ्कारसूत्र 1.3.26)

[17] (काव्यालङ्कारसूत्र 1.3.27)

[18] प्रधानगुणभावाभ्यां व्यङ्ग्यस्यैवं व्यवस्थिते।
काव्ये उभे ततोऽन्यद्यत्तच्चित्रमभिधीयते॥ (ध्वन्यालोक पृ॰ 494)

[19] रसभावादितात्पर्यविवक्षाविरहे सति।
अलङ्कारनिबन्धो यः स चित्र विषयो मतः॥ (ध्वन्यालोक पृ॰ 497)

यह चित्र काव्य भी पुनः शब्दार्थ के भेद से दो प्रकार का है- शब्दचित्र एवं वाच्यचित्र।[20] इस प्रकार ध्वनिकार आचार्य आनन्दवर्धन के मत में साकल्येन काव्य तीन प्रकार का है - ध्वनिकाव्य, गुणीभूतव्यङ्ग्यकाव्य तथा चित्रकाव्य।

आचार्य के द्वारा प्रतिपादित काव्य भेद में चित्र काव्य का अकाव्यत्व प्रतिपादन जैसा यद्यपि प्रतीत होता है[21] तो भी आचार्य चित्रकाव्य को काव्य का तृतीय भेद स्वीकार करते हैं।[22]

5. आचार्य मम्मटभट्ट-

आचार्य मम्मट व्यङ्ग्यार्थ की दृष्टि से काव्य के तीन विभाग कहते हैं- उत्तम, मध्यम तथा अधम। जहाँ वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यङ्ग्यार्थ अतिशय चमत्कारकारी हो वह उत्तम काव्य है-

इदमुत्तममतिशायिनिव्यङ्ग्ये वाच्याद् ध्वनिः बुधैः कथितः।[23]

जहाँ वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यङ्ग्यार्थ अनतिशायी हो वह द्वितीय गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य मध्यम काव्य कहलाता है।-

अतादृशिगुणीभूतव्यङ्ग्यं व्यङ्ग्ये तु मध्यमम्।[24]

पुनः जहाँ व्यङ्ग्यार्थ कवि का तात्पर्य न हो ऐसा गुणालङ्कार प्रधान[25] काव्य का तृतीय भेद अधम काव्य चित्र काव्य कहलाता है। यह चित्र काव्य शब्द तथा अर्थ के भेद दो प्रकार का है शब्द चित्र तथा अर्थ चित्र।

शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यङ्ग्यं त्ववरं स्मृतम्।[26]

आचार्य मम्मट गुणों का आधार रस को प्रतिपादिक करते हैं,[27] और रस सदैव व्यङ्ग्य ही होता है।[28] इस प्रकार चित्र काव्य में व्यङ्ग्य का अभाव होने से रस का भी अभाव होगा ही। ऐसी दशा में जहाँ रस का अभाव होगा वहाँ गुण का सद्भाव कैसे सम्भव है। यदि आधार ही नहीं होगा तो आधेय कैसे हो सकता है।

इसका समाधान यह है कि यहाँ अव्यङ्ग्य पद का अभिप्राय व्यङ्ग्य रहित नहीं अपितु कविविवक्षा रहित है। आचार्य द्वारा प्रदत्त अधम काव्य के उदाहरण स्वच्छन्दोच्छल..... इत्यादि पद में कविनिष्ठ भगवद्विषयक रति व्यङ्ग्य है ही, परन्तु यहाँ व्यङ्ग्य में कवि का तात्पर्य न होकर अलङ्कार योजना मात्र में कवि की दृष्टि है।

6. विद्यानाथ-

आचार्य विद्यानाथ भी व्यङ्ग्य के प्राधान्य, अप्राधान्य एवं अस्फुटत्व से काव्य के उत्तम, मध्यम तथा अधम तीन भेद प्रतिपादित करते हैं-

व्यङ्ग्यस्य प्राधान्याप्राधान्यास्फुटत्वेन च त्रिविधं काव्यम्।[29]

---

[20] चित्रं शब्दार्थभेदेन द्विविधं च व्यवस्थितम्।
तत्र किञ्चिच्छब्दचित्रं वाच्यचित्रमतः परम्॥ (ध्वन्यालोक पृ॰ 494)

[21] व्यङ्ग्यैवं व्यवस्थिते काव्ये उभे ततोऽन्यद्यत्तच्चित्रमित्यभिधीयते।

[22] एतच्चित्रं कवीनां विशृङ्खलगिरां रसादितात्पर्यमनपेक्ष्यैव काव्यप्रवृत्तिदर्शनादस्माभिः परिकल्पितम्। (ध्वन्यालोक पृ॰ 497)

[23] काव्यप्रकाश प्रथम उल्लास

[24] काव्यप्रकाश प्रथम उल्लास

[25] चित्रमिति गुणालङ्कारयुक्तम्। (काव्य प्रकाश प्रथम उल्लास)

[26] काव्य प्रकाश प्रथम उल्लास।

[27] ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः। (काव्य प्रकाश अष्टम उल्लास)

[28] रसः स्वप्नेऽपि न वाच्यः।

[29] प्रतापरुद्रीयम् पृ॰ 47।

आचार्य काव्य के तृतीय भेद चित्र के ती भेद बतलाते हैं - शब्दचित्र, वाच्यचिश्र तथा उभयचित्र।

पूर्वाचार्यों की भाँति आचार्य भी व्यङ्ग्य के प्राधान्य अप्राधान्य तथा अस्फुटत्व से काव्य विभाग प्रतिपादित करते हैं। यह चित्र काव्य का त्रिविध विभाजन ही विद्यानाथ के काव्य विभाजन में विशेष है।

7. आचार्य विश्वनाथ कविराज -

आचार्य विश्वनाथ कविराज व्यङ्ग्य के प्राधान्याप्राधान्य की दृष्टि से काव्य दो विभाग - ध्वनिकाव्य तथा गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य प्रतिपादित करते हैं।

ध्वनिर्गुणीभूतव्यङ्ग्यं चेति द्विधा मतम्।[30]

आचार्य विश्वनाथ पूर्वाचार्य प्रतिपादित काव्य के तृतीय भेद चित्र काव्य का खण्डन करते हैं। आचार्य का कहना है कि चित्र काव्य के लक्षण घटक अव्यङ्ग्य का अर्थ यदि व्यङ्ग्यार्थ का अभाव है तो व्यङ्ग्यार्थ के अभाव में चित्र काव्य को काव्य ही नहीं कहा जा सकता। यदि अव्यङ्ग्य पद का अर्थ ईषद् व्यङ्ग्य कहा जाए तो ईषद् व्यङ्ग्य का क्या स्वरूप होगा। यह ईषद् व्यङ्ग्य आस्वाद्य होगा या अनास्वाद्य। यदि यह आस्वाद्य व्यङ्ग्य है तो पूर्वोक्त दो भेदों में ही चित्र काव्य का समावेश क्यों नहीं ? और यदि यह ईषद् व्यङ्ग्य अनास्वाद्य तो पूर्वाचार्य प्रतिपादित काव्य यह भेद अकाव्य ही होगा। आचार्य विश्वनाथ पूर्वाचार्य प्रतिपादि काव्य के तृतीय भेद चित्र काव्य के खण्डन मे प्रमाण रूप में ध्वनिकार आचार्य आनन्दवर्धन को भी उद्धृत करते हैं-

प्रधानगुणभावाभ्यां व्यङ्ग्यस्यैवं व्यवस्थिते।
काव्य उभे ततोऽन्यद्यत्तचित्रमभिधीयते॥[31]

इस प्रकार आचार्य विश्वनाथ के मत में व्यङ्ग्य की दृष्टि काव्य के दो ही भेद हैं - ध्वनिकाव्य तथा गुणीभूत व्यङ्ग्य काव्य।

पुनः आचार्य दृश्य एवं श्रव्य के भेद से काव्य का द्विविध विभाजन प्रतिपादित करते हैं।

दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्।[32]

आचार्य कर्णपूरगोस्वामी -

आचार्य कविकर्णपूर भी उत्तम, मध्यम तथा अधम भेद के काव्य का त्रिविध विभाग प्रतिपादित करते हैं।-

उत्तमं ध्वनिवैशिष्ट्ये मध्यमे तत्र मध्यमम्।
अवरं तत्र निष्पन्दः इति त्रिविधमादितः॥[33]

पुनः अवर काव्य के शब्दार्थ भेद दो विभाग प्रतिपादित किए हैं।

शब्दार्थयोश्च वैचित्र्ये द्वे यातः पूर्वपूर्वताम्।[34]

इस प्रकार काव्य का त्रिविध भेद प्रतिपादित कर आचार्य उत्तमोत्तम नाम का ध्वनिकाव्य का प्रभेद प्रतिपादित करते हैं।[35]

---

[30] साहित्यदर्पण पृ॰ 206।

[31] ध्वन्यालोक।

[32] साहित्यदर्पण प॰ 272।

[33] अलङ्कारकौस्तुभ पृ॰ 13।

[34] अलङ्कारकौस्तुभ पृ॰ 14।

[35] अलङ्कारकौस्तुभ पृ॰ 14।

आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ –

आचार्य ने सर्वप्रथम नूतन दृष्टि का आश्रय ले कर चमत्कार के आधार पर काव्य का विभाग प्रतिपादित किया है - उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम तथा अधम। आचार्य के मत में चमत्कार की तीन श्रेणियाँ हैं- व्यङ्ग्य चमत्कार, वाच्यचमत्कार तथा शब्दचमत्कार। व्यङ्ग्य चमत्कार के प्राधान्य एवं अप्राधान्य से काव्य के दो भेद- उत्तमोत्तम तथा उत्तम। पुनः वाच्य चमत्कार का काव्य का तृतीय भेद मध्यम अन्त में वाच्यचमत्कारोपस्कृत शब्द के चमत्कार में काव्य चतुर्थ भेद अवर काव्य।

आचार्य मम्मट प्रतिपादित काव्य भेद में व्यङ्ग्य के सद्भाव एवं असद्भाव को आधार पर काव्य भेद प्रतिपादित है, ऐसी दशा में व्यङ्ग्य सद्भाव की दशा काव्य के दो भेद उत्तम ध्वनि काव्य तथा मध्यम गुणीभूत व्यङ्ग्य काव्य। आचार्य प्रतिपादित व्यङ्ग्य की दृष्टि से काव्य के दो भेद उचित प्रतीत होते हैं परन्तु काव्य का तृतीय भेद व्यङ्ग्यार्थ में कवि का तात्पर्य न हो गुणालङ्कार विशिष्ट रचना में कवि का तात्पर्य हो वहाँ अतात्पर्यभूत व्यङ्ग्य वस्तुतः विद्यमान होते हुए भी अविद्यमानकल्प ही है अतः तृतीय भेद को भी व्यङ्ग्य की दृष्टि से कहना उचित प्रतीत नहीं होता है। अतः जहाँ वाच्य अथवा शब्द कृत चमत्कार हो वे भेद वाच्य अथवा शब्द से ही माने जाएँ, इनका विभाजन व्यङ्ग्य के आधार पर मानना उचित प्रतीत नहीं होता है। इसलिए आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ ने चमत्कार को काव्य का भेदक तत्त्व प्रतिपादित किया है।

1. उत्तमोत्तम काव्य-

आचार्य पण्डितराज प्रथम उत्तमोत्तम काव्य का लक्षण कहते हैं-

शब्दार्थौ यत्र गुणीभावितात्मानौ कमप्यर्थमभिव्यङ्क्तस्तदाद्यम्।[36]

जहाँ शब्द एवं अर्थ अपने को गौण बनाकर उस चमत्कारकारी प्रतीयमान अर्थ को व्यञ्जनावृत्ति से कहते हैं वह प्रथम उत्तमोत्तम काव्य कहलाता है।

यदि लक्षण में अर्थ का विशेषण कमपि नहीं दिया जाता तो अतिगूढ व्यङ्ग्य तथा स्फुट व्यङ्ग्य में लक्षण की अतिव्याप्ति होती।[37] अपराङ्गव्यङ्ग्य तथा वाच्यसिद्ध्यङ्ग व्यङ्ग्य भी चमत्कारकारी तो होते हैं अतः इनमें अतिव्याप्ति वारण के लिए गुणीभावितात्मानौ पद का समावेश लक्षण में किया गया है।[38]

न ही अतिगूढ और न ही अतिस्फुट व्यङ्ग्य चमत्कार को उत्पन्न करता है। कामिनीकुचकलश के समान व्यङ्ग्य ही चमत्कार को उत्पन्न करता है।

अपराङ्गव्यङ्ग्य तथा वाच्यसिद्ध्यङ्ग व्यङ्ग्य में जितना चमत्कार होता है उतना अतिगूढ स्फुट व्यङ्ग्य में नहीं।

अस्फुट एवं अगूढ व्यङ्ग्य जो गुणीभूतव्यङ्ग्य के प्रभेद हैं इनका निरास करने के लिए लक्षण में कमपि पद का उपादान किया गया है। अपराङ्गव्यङ्ग्य एवं वाच्यसिद्ध्यङ्ग व्यङ्ग्य दोनों ही गुणीभूतव्यङ्ग्य प्रभेदों में वाच्य का प्राधान्य होता है एवं व्यङ्ग्य भी चमत्कारकारी रोता है। अतः व्यङ्ग्य के वाच्य के अपेक्षा अप्रधान होते हुए चमत्कारकारी होने से इन काव्यों में अतिव्याप्ति वारण के लिए गुणीभावितात्मानौ इस पद का लक्षण में समावेश किया गया है।

आचार्य कृत यह काव्य लक्षण ध्वनिकार के द्वारा प्रतिपादित ध्वनि के लक्षण से साम्य रखता है -

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः॥[39]

---

[36] रसगङ्गाधर प्रथम आनन पृ॰ 37।

[37] कमपीति-चमत्कृतिभूमिम्, तेनातिगूढस्फुटव्यङ्ग्ययोर्निरासः। (रसगङ्गाधर प्रथम आनन पृ॰ 37।

[38] अपराङ्गवाच्यसिद्ध्यङ्गव्यङ्ग्यस्यापि चमत्कारितया तद्वारणाय-गुणीभावितात्मानाविति स्वापेक्षया व्यङ्ग्यप्राधान्याभिप्रायम्। (रसगङ्गाधर प्रथम आनन पृ॰ 37)

[39] ध्वन्यालोक कारिका 13।

प्रकृत ध्वनि लक्षण में वा पद प्राधान्य के अभिप्राय से विकल्पार्थक[40] है। अर्थात् अविवक्षित वाच्यध्वनि में शब्द व्यञ्जक होता है और अर्थ सहकारी तथा विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि में अर्थ व्यञ्जक होता है और शब्द सहकारी। इसी अभिप्राय से अर्थः शब्दः वा कहा गया है।[41]

व्यङ्क्तः में द्विवचनानुपपत्ति-

अविवक्षितवाच्यध्वनि में अर्थ सहकृत शब्द का प्राधान्य है इस प्रकार शब्द उस चमत्कारकारी अर्थ को व्यक्त करता है। इसी प्रकार विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि में शब्द सहकृत अर्थ का प्राधान्य है, अतः अर्थ उस चमत्कारकारी अर्थ को व्यक्त करता है। इसप्रकार गुणविशिष्ट प्रधान ही प्रतीयमान अर्थ को व्यक्त करता है और उस प्रधान के एकवचनान्त होने से द्विवचनान्त व्यङ्क्तः पद की सङ्गति करना क्लिष्ट प्रतीत होता है।

यदि हम किसी प्रकार व्यङ्क्तः में द्विवचन का समर्थन करें भी तो चैत्र के सहकार से मैत्र तथा मैत्र के सहकार से चैत्र के गमन को कहने के लिए चैत्रः मैत्रः वा गच्छतः यह प्रयोग कोई नहीं करता। अतः ध्वनिलक्षण में द्विवचन का समर्थन अतीव क्लिष्ट ही प्रतीत होता है।

आचार्य उत्तमोत्तम काव्य के तीन उदाहरण देते हैं-

शयिता सविधेऽप्यनीश्वरा सफलीकर्तुमहोमनोरथान्।
दयिता दयिताननाम्बुजं दरमीलन्नयना निरीक्षते॥[42]

यह रसध्वनि का उदाहरण है।

द्वितीय उदाहरण-

गुरुमध्यगता मया नताङ्गी निहता नीरजकोकरेण मन्दम्।
दरकुण्डलताण्डवं नतभ्रूलतिकं मामवलोक्य घूर्णिताऽऽसीत्॥[43]

यह भावध्वनि का उदाहरण है।

तृतीय उदाहरण -

तल्पगतापि च सुतनुः श्वासासङ्गं न या सेहे।
सम्प्रति सा हृदयगतं प्रियपाणिं मन्दमाक्षिपति॥[44]

यह संलक्ष्यक्रम के रतिध्वनि का उदाहरण है।

इसके अनन्तर आचार्य मम्मट के द्वारा ध्वनिकाव्य के दिए गए उदाहरण की अप्पय्यदीक्षित कृत व्याख्या की पण्डितराज ने समीक्षा की है।

2. उत्तम काव्य-

उत्तमोत्तम काव्य का लक्षण तथा उदाहरण कहने के पश्चात् आचार्य उत्तम काव्य का लक्षण कहते हैं।

यत्र व्यङ्ग्यमप्रधानमेव सच्चमत्कारकारणं तद्द्वितीयम्।[45]

---

[40] गर्हासमुच्चयप्रश्नशङ्कासम्भावनास्वपि।
उपमायां विकल्पे वा सामि त्वर्धे जुगुप्सिते॥ (अमरकोश)

[41] यद्यप्यविवक्षितवाच्ये शब्दे एव व्यञ्जकस्तथाप्यर्थस्यापि सहकारिता न त्रुटयति, अन्यथा अज्ञातार्थोऽपि शब्दस्तद्व्यञ्जस्स्यात्। विवक्षितान्यपरवाच्ये च शब्दस्यापि सहकारित्वं भवत्येव, ... अर्थः शब्दो वेति विकल्पाभिधानं प्राधान्यभिप्रायेण। (ध्वन्यालोक प्रथम उद्योत लोचन पृ॰ 104

[42] रसगङ्गाधर प्रथम आनन पृ॰ 38।

[43] रसगङ्गाधर प्रथम आनन पृ॰ 44।

[44] रसगङ्गाधर प्रथम आनन पृ॰ 45।

जहाँ व्यङ्ग्य अप्रधान होते हुए चमत्कार को उत्पन्न करता है, वह द्वितीय उत्तम काव्य है। यहाँ अप्रधान होते हुए ही चमत्कार का जनक हो इस कथन का अभिप्राय है कि यह व्यङ्ग्य अप्रधान ही हो किसी भी अर्थ के प्रति प्रधान न हो। ऐसा कहने से वाच्य की अपेक्षा प्रधान व्यङ्ग्य परन्तु व्यङ्ग्यान्तर की अपेक्षा अप्रधान हो ऐसे व्यङ्ग्य की अप्रधानता में वह उत्तम काव्य कहलाए।

इसका अभिप्राय यह है कि जिस काव्य में व्यङ्ग्य वाच्य की अपेक्षा प्रधान तथा व्यङ्ग्यान्तर की अपेक्षा अप्रधान हो ऐसा व्यङ्ग्यार्थ अपने ज्ञान के द्वारा चमत्कार का जनक हो वह द्वितीय काव्य है।

अयं स रसनोत्कर्षी पीनस्तनविमर्दनः।
नाभ्यूरुजघनस्पर्शी नीवीविस्रंसनः करः॥

इस अपराङ्गव्यङ्ग्य के उदाहरण में श्रृङ्गार तथा करुण दो व्यङ्ग्य हैं। प्रधान व्यङ्ग्य करुण है, तथा गौण व्यङ्ग्य श्रृङ्गार है। श्रृङ्गार रूप जो व्यङ्ग्य वह वाच्य की अपेक्षा प्रधान होते हुए करुण रूप व्यङ्ग्य की अपेक्षा अप्रधान होने से लक्षण में अतिव्याप्ति नहीं होगी, क्योंकि यद्यपि करुण रूप व्यङ्ग्य के प्रति श्रृङ्गार का अप्राधान्य यहाँ है तो भी यह श्रृङ्गार रूप व्यङ्ग्य वाच्यार्थ की अपेक्षा प्रधान है और लक्षण में जहाँ व्यङ्ग्य अप्रधान ही हो वही काव्य द्वितीय उत्तम काव्य कहलाएगा।

यदि वाच्य को करुण रूप व्यङ्ग्य प्रधान व्यङ्ग्य का उत्कर्षक होने से श्रृङ्गार की अपेक्षा प्रधान कहा जाए तो इस स्थन में अतिव्याप्ति होगी।

व्यङ्ग्य रस की अपेक्षा वाच्य वस्तु के चमत्कारोत्कर्षक होने पर भी प्राधान्य कहने में प्रमाण का अभाव है।

प्रदीपोद्योत में प्रकृत श्लोक में श्रृङ्गार ही करुण रस का उत्कर्षक होने के वाच्य की अपेक्षा प्राधान्य कहे जाने से अतिव्याप्ति नहीं होगी।

रस के अपरिच्छन्न होने से रस का पराङ्गत्व कैसे सम्भव है। यहाँ श्रृङ्गार पद श्रृङ्गार रस के स्थायीभाव रति परक है अतः रति के अङ्ग होने में कोई आपत्ति नहीं।

द्वितीय काव्य के लक्षण में चमत्कारकारणम् यह पद नहीं होता तो लीन व्यङ्ग्य, वाच्यचित्र में व्यङ्ग्य अप्रधान तो होता ही है, अतः द्वितीय काव्य मे अतिव्याप्ति होगी। इसके वारण के लिए चमत्कारकरणम् यह पद दिया गया है, क्योंकि लीनव्यङ्ग्य तथा वाच्यचित्र में व्यङ्ग्य अप्रधान तो होता है परन्तु यहाँ व्यङ्ग्य चमत्कार जनक नहीं होता। अतः चमत्कारकारणम् यह पद ग्रहण करने से इनमें अतिव्याप्ति नहीं होगी।

लीनव्यङ्ग्य, अस्फटव्यङ्ग्य तथा गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य के तृतीय भेद के प्रभेद हैं। वाच्यचित्र अर्थालङ्कारोपस्कृत अविवक्षित व्यङ्ग्य चत्र नाम का काव्य चतुर्थ भेद अधम काव्य है। अतः इनमें व्यङ्ग्य के सर्वधा अप्रधान होने से काव्य के द्वितीय भेद के लक्षण में अतिव्याप्ति होगी। इस अतिव्याप्ति वारण हेतु चमत्कारकारणम् इस पद का लक्षण में समावेश किया गया है। चमत्कारकारणम् इस पद के लक्षण में निवेश से लीनव्यङ्ग्य, अस्फुटव्यङ्ग्य, गुणीभूतव्यङ्ग्य तथा वाच्य चित्र में अविवक्षित व्यङ्ग्य के चमत्कार जनक न होने से इन प्रभेदों की द्वितीय भेद के लक्षण में अतिव्याप्ति नहीं होगी।

अस्फुट व्यङ्ग्य का उदाहरण-
अदृष्टे दर्शनोत्कण्ठा दृष्टे विच्छेदभीरुता।
नादृष्टेन न दृष्टेन भवता लभ्यते सुखम्॥

इस उदाहरण में यथाऽदृष्टः कदापि न स्याः, तथा कुरु इस व्यङ्ग्य के होने पर भी, इस व्यङ्ग्य का सहृदयों को भी सुखपूर्वक बोध न होने से यह व्यङ्ग्य अचमत्कारी ही है।

इसी प्रकार असुन्दर व्यङ्ग्य का उदाहरण-
वानीरकुञ्जोड्डीनशकुनिकोलाहलं श्रृण्वन्त्याः।

---

[45] रसगङ्गाधर प्रथम आनन पृ॰ 66।

गृहकर्मव्यापृताया वध्वाः सीदन्त्यङ्गानि॥

इस असुन्दर व्यङ्ग्य के उदाहरण में दत्तसङ्केतः नायकः वेतसीलताकुञ्जं प्रविष्टः यहाँ यह व्यङ्ग्य भी है और उपलक्षण भी। इस प्रकार असुन्दर व्यङ्ग्य के भी चमत्कार जनक न होने से इसमें भी द्वितीय काव्य भेद में लक्षण की अतिव्याप्ति नहीं होगी।

उपरि उक्त व्यख्यान में वाच्य चित्र से शब्द चित्र भी समझना चाहिए, क्योंकि वाच्य चित्र की भाँति शब्दचित्र में भी

3. मध्यम काव्य -

आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ काव्य का तृतीय भेद मध्यम काव्य प्रतिपादित करते हैं-

यत्र व्यङ्ग्यचमत्कारासमानाधिकरणो वाच्यचमत्कारस्तत्तृतीयम्।[46]

जहाँ वाच्य चमत्कार के समानाधिकरण्य में व्यङ्ग्य चमत्कार न हो, अर्थात् व्यङ्ग्य चमत्कार की अपेक्षा वाच्य चमत्कार उत्कृष्ट हो वह काव्य का तृतीय भेद मध्यम काव्य कहलाता है।

जहाँ व्यङ्ग्य की प्रतीति से उत्पन्न चमत्कार होते हुए भी वाच्यार्थ की प्रतीति से उत्पन्न चमत्कार में अन्तर्निगीर्ण होने से स्पष्टतया अनुभव का विषय नहीं बनता वह तृतीय काव्य है। यहाँ व्यङ्ग्य चमत्कार का सर्वथा अभाव नहीं होता। क्योंकि बिना व्यङ्ग्य चमत्कार के वाच्य चमत्कृत सम्भव ही नही है। आचार्य मध्यम काव्य का उदाहरण देते हैं-

तनयमैनाकगवेषणलम्बीकृत-जलधिजठरप्रविष्ट-हिमगिरिभुजायमानाया भगवत्या भागीरथ्याः सखी।[47]

यमुना, इन्द्र के भय से समुद्र के अन्त- तल में लीन हिमालय के पुत्र मैनाक नाम के शैल को खोजने के लिए समुद्र के उदर में प्रविष्ट लम्बीकृत हिमालय पर्वत की भुजा के समान आचरण करता हुई भगवती गङ्गा की सखी है। प्रकृत उदाहरण में तनय मैनाक के अन्वेषण के लिए समुद्र के अन्त-तल में प्रविष्ट हिमालय की भुजा के समान अर्थ को व्यक्त करने के लिए भुजायमानायाः इस पद में सदृश आचारार्थक क्यङ् प्रत्यय है। यद्यपि क्यङ् प्रत्यय उपमा अर्थ में है तो भी पर्यवसान में सम्भावना की प्रतीति होने से उपमोपक्रमोत्प्रेक्षा वाच्य है, तथा गङ्गा की हिमालय की भुजा के साथ की गई उत्प्रेक्षा से 'गङ्गा की स्वच्छता' एवं तनय मैनाक के अन्वेषण में समुद्र के उदर में गङ्गा के प्रवेश से 'गङ्गा का पाताल के अन्तः तल तक पहुँचना' व्यङ्ग्य हैं।

यहाँ पश्चात् प्रतीयमान 'गङ्गा की स्वच्छता' एवं 'गङ्गा का पाताल के अन्तः तल तक पहुँचना' व्यङ्ग्य चमत्कार को गङ्गा हिमालय की भुजा के समान आचरण कर रही हैं तथा तनय मैनाक के अन्वेषण में समुद्र के उदर में गङ्गा का प्रवेश वाच्यचमत्कार के द्वारा निगीर्ण कर लिया गया है। अर्थात् व्यङ्ग्य चमत्कार वाच्य चमत्कार की कुक्षि में प्रविष्ट होने से वाच्यापेक्षा अधिक चमत्कार को उत्पन्न नहीं करता है।

व्यङ्ग्य तो स्वयं में चमत्कार जनक होता ही है तो यहाँ व्यङ्ग्य चमत्कार का वाच्य चमत्कार से तिरोभूत होना कैसे सम्भव है। जिस प्रकार कोई गौराङ्ग ग्राम्य (प्रसाधनानभिज्ञ) नायिका के द्वारा काश्मीरद्रवाङ्गराग (केसर गन्धद्रव्य विशेष से निर्मित अङ्ग राग) के लेप से उस नायिका का अपने अङ्गो का गौरत्व छिप जाता है उसी प्रकार व्यङ्ग्य का स्वयं का चमत्कार वाच्य चमत्कार से छिप जाता है।[48]

यहाँ काव्य के तृतीय भेद में व्यङ्ग्य का सर्वथा अभाव इष्ट नहीं है क्योंकि कोई भी वाच्य व्यङ्ग्य के चमत्कार के स्पर्श के बिना चमत्कारजनक हो ही नहीं सकता है।[49] अतः व्यङ्ग्य के सर्वथा अभाव की दशा में चमत्कार का अभाव होने उस शब्द का काव्यत्व ही बाधित हो जाएगा।

व्यङ्ग्य अप्रधान होते हुए चमत्कार का जनक हो, अर्थात् अप्रधान होते हुए जागरुक व्यङ्ग्य द्वितीय उत्तम काव्य, तथा व्यङ्ग्य अप्रधान होते हुए वाच्य चमत्कार से तिरोभूत, अर्थात् अजागरूक व्यङ्ग्य तृतीय मध्यम काव्य कहलाएगा।[50]

---

[46] रसगङ्गाधर प्रथम आनन प॰ 76।

[47] रसगङ्गाधर प्रथम आनन प॰ 76।

[48] रसगङ्गाधर प्रथम आनन प॰ 77।

[49] न तादृशोऽस्ति कोऽपि वाच्यार्थो यो मनागनामृष्टप्रतीयमा एव स्वतो रमणीयतामाधातुं प्रभवति। (रसगङ्गाधर प्रथम आनन प॰ 78।)

इस प्रकार अप्रधान व्यङ्ग्य की दो स्थितियाँ हैं प्रथम अप्रधान होते हुए जागरूक व्यङ्ग्य तथा अप्रधान होते हुए अजागरूक व्यङ्ग्य। प्रथम स्थित में वह काव्य का द्वितीय भेद उत्तम काव्य कहलाता है, तथा द्वितीय स्थिति में वह काव्य का तृतीय भेद मध्यम काव्य कहलाएगा।

समासोक्त्यादि अलङ्कारों में व्यङ्ग्य के गुणीभूत होते हुए भी चमत्कारजनक होने से ये अलङ्कार प्रधान काव्य द्वितीय भेद उत्तम काव्य कहलाएगें। तथा दीपकादि अलङ्कारों में उपमादिरूप व्यङ्ग्य के होते हुए भी व्यङ्ग्य के चमत्कारजनक न होने से ये अलङ्कार प्रधान काव्य तृतीय भेद मध्यम काव्य कहलाएगा। इस प्रकार अलङ्कार प्रधान सभी काव्यों का उक्त दो भेदों में अन्तर्भाव हो जाएगा।

अधम काव्य-

आचार्य काव्य के चतुर्थ अधम काव्य का लक्षण कहते हैं-

यत्रार्थचमत्कृत्युपस्कृता शब्दचमत्कृतिः प्रधानं, तदधमं चतुर्थम्।

जहाँ अर्थ चमत्कृति से उपस्कृत शब्द चमत्कृति प्रधान हो वह काव्य चतुर्थ भेद अधम काव्य कहलाता है। इस काव्य भेद में भी व्यङ्ग्य होता है परन्तु यहाँ व्यङ्ग्य अविवक्षित होता है। यथा-

मित्रात्रिपुत्रनेत्राय, त्रयीशात्रवशत्रवे।

गोत्रारिगोत्रजत्राय, गोत्रात्रे ते नमो नमः॥

प्रकृत श्लोक में वृत्त्यप्रास से होने वाले चमत्कार में ही कवि का तात्पर्य होने से शब्दालङ्कार का चमत्कार प्रधान है। अर्थ से होने वाली चमत्कृति शब्द चमत्कृति में लीन शब्द की चमत्कृति में अङ्ग है। यद्यपि कविनिष्ठ भगवद्विषयक रति यहाँ व्यङ्ग्य है तो भी व्यङ्ग्य कृत चमत्कार अस्फुट होने से कवितात्पर्य विषय न होने से लीन ही है।

यद्यपि एकाक्षरपद्य, अर्धावृत्तियमक, पद्मबन्ध आदि काव्यों में जहाँ अर्थ कृत चमत्कार न के समान हो एसे काव्यों को पञ्चम भेद अधमाधम में गणना करनी चाहिए।

यद्यपि एकाक्षरपद्य, अर्धावृत्तियमक, पद्मबन्ध आदि में आचार्य द्वारा प्रतिपादित काव्य लक्षण रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द काव्य है यह लक्षण ही नही घटता है क्योंकि ये पद्य अर्थ चमत्कृति शून्य होने से काव्य पद भाज ही नहीं हैं। तो इनके के काव्य का एक पृथक पञ्चम भेद अधमाधम मानना उचित नहीं प्रतीत होता है।

मित्रात्रिपुत्रनेत्राय-मित्रश्च अत्रिपुत्रश्च मित्रात्रिपुत्रौ, मित्रात्रिपुत्रौ नेत्रे यस्य सः मित्रात्रिपुत्रनेत्रः, तस्मै मित्रात्रिपुत्रनेत्राय। (मित्र (सूर्य) तथा अत्रिपुत्र नेत्र हैं जिनके उनको।

त्रयीशात्रवशत्रवे- त्रय्याः शात्रवस्यापहारकर्ता रिपोर्हयग्रीवदैत्यस्य शत्रवे नाशकाय। गोत्रारिगोत्रजत्राय, गोत्रात्रे ते नमो नमः॥

---

[50] रसगङ्गाधर प्रथम आनन प॰ 78।